चण्डिका-माहात्म्य

रचयिता

पण्डित 'शिवाधार' सुकुल

प्रकाशक

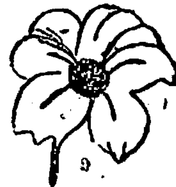
पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग—६

तृतीय संस्करण] वासन्तिक नवरात्र, २०४७ वि० : अप्रैल ९० [मूल्य २ रु०

अ-नु-क्र-म



भूमिका

उत्तर प्रदेश के 'उन्नाव' जनपद की दक्षिणी सीमा पर गङ्गा-तट पर 'बगसरि' नाम का एक ग्राम है। यह अवध के 'बैसवारा' नामक प्रसिद्ध भू-खण्ड में स्थित है, जो 'उन्नाव' और 'रायबरेली' के जिलों में पड़ता है। मुगलों के शासन-काल के प्रारम्भ में डौंड़ियाखेरे के राव देवराय के पुत्र कनक सिंह ने अपने भाई ठाकुर भवानी सिंह को यह ग्राम जागीर में दिया था। 'बगसरि' में आकर इन्होंने तीन मन्दिर बनवाए—ग्राम से पूर्व में 'वागीश्वर' का, ग्राम में 'दिल्लीश्वर' का और पश्चिम में 'श्री चण्डिका जी' का। 'श्री चण्डिका जी' के इस मन्दिर में उन्होंने पास के वन में एक झाड़ी के नीचे से प्राप्त शिला-खण्ड की दो मूर्तियों की देवी के रूप में स्थापना की और प्रचलित किम्वदन्ती के अनुसार उन्हें 'श्री चण्डिका' के नाम से अभिहित किया।

किम्वदन्ती है कि 'सुरथ' और 'समाधि' ने प्राचीन काल में यहीं नदी के किनारे भगवती चण्डिका की मूर्ति बनाकर तपस्या की थी और चण्डिका ने उन्हें दर्शन देकर मन-वाञ्छित वरदान दिया था। इस कथन का आधार यह है कि चण्डिका के मन्दिर के पश्चिम का भू-भाग आज भी 'वन' कहलाता है और उसी में यहाँ के लोग 'वनेवा की कुटी' और 'राजा का चौतरा' बताकर सुरथ और समाधि के वास-स्थानों का निर्देश किया करते हैं। यहाँ एक नदी भी थी, जो अब गङ्गा जी के कारण नगण्य हो गई है। कदाचित् भगीरथ के श्री गङ्गा जी के लाने के पहले वह नदी, जिसके तट पर सुरथ और समाधि ने तप किया था, अधिक बड़ी नदी रही हो।

चाहे जो हो, यहाँ के लोग इस 'चण्डिका-क्षेत्र' को सुरथ और समाधि का तप-स्थल ही मानते हैं। ऐसा समझने के लिए एक यह प्रत्यक्ष प्रमाण भी है कि यहाँ 'चण्डिका' की एक-सी 'दो मूर्तियाँ' एक ही मन्दिर में साथ-साथ स्थापित हैं। इसके सिवा यह इस भू-भाग में आज भी सिद्ध स्थान समझा जाता है। यहाँ चण्डिका की कला सदा जाग्रत रहती है। चण्डिका का वर्तमान मन्दिर प्राचीन ही नहीं, अति भव्य भी है। (कहा जाता है, इसे बकसर के ठाकुर भवानी सिंह बैस ने बनवाया था।) पिछले लगभग चार सौ वर्ष से यह स्थान उक्त जनपद के एक प्रमुख तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

बकसर-निवासी हमारे ज्येष्ठ भ्राता पण्डित शिवाधार सुकुल श्री चण्डिका जी के परम भक्त थे। यह 'चण्डिका-माहात्म्य' उन्हीं की रचना है। इस रचना के प्रारम्भ में उन्होंने 'दुर्गा-सप्तशती' के आधार पर इस क्षेत्र का प्राचीन इतिहास १८ छन्दों में लिखा है। इसके अनन्तर श्री चण्डिका जी की ३१ छन्दों में सरस विनय लिखी है। इन छन्दों को एकत्र कर सुरक्षित रखने का श्रेय हमारे अग्रज पण्डित मातादीन सुकुल को है। आशा है, इस रचना से पाठकों को इस क्षेत्र या तीर्थ के महत्त्व का ज्ञान होगा, साथ ही श्री चण्डिका के चरणों के प्रति उनमें भक्ति भी जाग्रत होगी।

शारदीय नवरात्र, सम्वत् १९९१ —देवीदत्त शुक्ल

विशेष : मूलतः इस पुस्तिका में शुक्लजी द्वारा लिखित अपने 'वाला के सुकुल-वंश' का इतिहास भी प्रकाशित हुआ था। उसे शीघ्र ही प्रकाश्य 'बकसर के सिद्ध पुरुष' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया जायगा। —ऋतशील शर्मा, प्रकाशक/३१-३-९०

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

चण्डिका-माहात्म्य

इतिहास–खण्ड

बन्दौं श्रीगणेश - गुरु - गिरिजा, गो - पति गिरा गिरीशा ।
अज सनकादि आदि नारद, सुर सन्त महन्त महीशा ॥
इष्ट - देव महि - देव देव के, चरनन सीस नवाऊँ ।
श्री चण्डिका - क्षेत्र कै महिमा, सुठि छन्दन महँ गाऊँ ॥१॥
स्वारोचिष - मनु - युग महँ जन्मे, चैत्र - वंश वर रूरे ।
पालत प्रजा पुत्र - सम निसि - दिन, सुरथ नृपति गुन पूरे ॥
चारिहु बरन बिराजत नीके, कर्म - धर्म मन दीन्हे ।
सदा सुकाल राज महँ राजत, सत्य रहत मन चीन्हे ॥२॥

का०—१

प्रजा सुरथ - कीरति नित गावत, पावत हरख ललामा।
हिलि-मिलि रहत सकल नर - नारी, अपने - अपने धामा ॥
देखि शान्ति - सुख अमित सम्पदा, सों पूरित वह देशा।
कोल लोग दल - बल निज साजे, किए भयानक भेषा ॥३॥
चढ़ि आयो साहस करि भारी, सङ्गर कहँ चित दीन्हा।
सुनत सुरथ चतुरङ्ग सैन लै, बढ़ि आगे ह्वै लीन्हा ॥
भयो युद्ध अति घोर भयानक, हारि गयो जब राजा।
चलि आयो अपनी रजधानी, बिगरत लखि निज काजा ॥४॥
तहाँ मन्त्रि - गण सैन - कोस लै, राज - हरण चित ठाना।
लखि यह हाल दुःख सों राजा, बन कहँ कीन्ह पयाना ॥
घोर बिपिन महँ देख्यो, सुन्दर आश्रम एक पुनीता।
मेधस ऋषि जहँ करत तपस्या, द्वैत - भाव जिन जीता ॥५॥
वा थल की अति सुखद शान्ति, लखि राजा मन हरखायो।
दुःख - बिखाद मानसिक पीड़ा, सकल तहाँ बिसरायो ॥

मुनि ढिग जाय चरण गहि, आपन सारा हाल बतायो।
आसिख दै मेधस समुझायो, राजा बहु सुख पायो ॥६॥
राज-सम्पदा सों बिरक्त होइ, नृप तँह कीन बसेरा।
कथा - पुरान सुनत मन राखत, भ्रमत रहत चहुँ फेरा॥
मिल्यो एक दिन बन महँ घूमत, नाम समाधि ललामा।
वणिक - श्रेष्ठ आकुल - व्याकुल अति, पास न एक छदामा ॥७॥
देखि दसा राजा यह बोले, "काहे तुम दुख पावत ?
मुनि आश्रम यह सब प्रानिन के, सिगरे ताप मिटावत॥"
कह्यो बनिक, "हौं मैं यह जानत, पै दुख मम अति भारी।
पत्नी - पुत्र छीनि धन - दौलत, घर तें दीन्ह निकारी ॥८॥
तदपि चित्त उनहीं कहँ चाहत, ममता नेकु न मानै।
मर्म न जानत का कारन है, सदा रहत अकुलानै॥"
सुनि समाधि कै करुन कहानी, सुरथ धैर्य उर आन्यो।
राव - रङ्क है सुखी न कोऊ, निश्चय करि यह जान्यो ॥९॥

लै समाधि कहँ राजा सत्वर, मेधस के ढिग आयो।
आपन अरु समाधि कै चिन्ता, उन कहँ सकल सुनायो ।।
कह्यो नृपति, "मुनि-वर ! हौं जानत, है असार संसारा ।
पै भूलत एकहु छिन नाहीं, राज - पाट धन - दारा ।।१०
पत्नी - पुत्र धाम - धन लैकै, बनिकहिं दीन्ह निकारी ।
ताहू पै उनकै यह चाहत, लेन खबरि सुख - कारी ।।
मो मन संसय अति बाढ़्यो, हे मुनि - वर ! सुनहु सयाने ।
यहि नश्वर जग - महँ, नर - नारी काहे रहत भुलाने ?"।।११।।
"सुनु राजा", मेधस ऋषि बोले, "जनि चिन्ता उर आनहु ।
जेहि माया - बस जगत भुलाना, ता कहँ सब कछु जानहु ।।
रचै संहरै पालै सब, वह माया - मय जग - जननी ।
ध्यावहु जाय अचल करि आसन, सरिता - तट भ्रम-समनी" ।।१२।।
मेधस कहि - कहि कथा पुरानी, बार - बार समुझायो ।
जेहि बिधि देय चण्डिका दर्सन, सो सब तिन्हैं बतायो ।।

पुलकित सुरथ - समाधि नाय सिर, तुरत नदी - तट जाई ।
दिव्य चण्डिका कै उन मूरति, निज - निज तहाँ बनाई ।।१३।।
बिधि-बिधान सों करि नित पूजा, देवि-सूक्त जप ठाना ।
निज शरीर को रक्त काढ़ि कै, देत रहत बलि-दाना ।।
निराहार वा मिताहार रहि, घोर तपस्या ठानी ।
उनके तप ते होइ प्रसन्न तहँ, प्रकटी आय भवानी ।।१४।।
"माँगहु वर मन - माना", बोलीं जग-जननी महरानी ।
दर्सन लहि राजा सुख पायो, तैसेहु बनिकहु ज्ञानी ।।
सुरथ तहाँ राजा-पद माँग्यो, होइ प्रसन्न मन-माना ।
कहा समाधि, "मिलै माता ! मोहिं, मुक्ति परम सुख ज्ञाना" ।।१५।।
सिंह-वाहिनी तब समाधि कहँ, निज पद तत्क्षण दीन्हा ।
राजा कहँ मन्वन्तर-पद दै, पूर्ण मनोरथ कीन्हा ।।
छोड़ि कला निज गईं भवानी, सत्वर अपने लोका ।
भयो क्षेत्र तब ते जग-जाहिर, जहाँ न व्यापै शोका ।।१६।।

सुरथ-समाधि मूर्ति दुइ थापी, अजहूँ तहाँ बिराजैं।
देव-अदेव आय नित पूजैं, अपने सुख के काजैं॥
गङ्गा-तट ऊँचे थल राजत, मन्दिर भव्य पुराना।
जग-जननी चण्डिका भवानी, कीन जहाँ निज थाना॥१७॥
सो यह कथा जुगन चलि आई, गावत वेद - पुराना।
'बकसर'-छेत्र पुण्य-प्रद पावन, जानत सकल जहाना॥
इहाँ लोक पर-लोक बनावत, दूनौ करत ठिकाना।
'शिवाधार' आवत ते पावत, मन-वाञ्छित वर-दाना॥१८॥



विनय-खण्ड

चलु मन शरण चण्डी के गहौ, करौ जनि बेरा रे।
'बैसवार'-मणि देश ग्राम को, 'बकसर' बुध-जन टेरा रे।।
पश्चिम ओर मील भरि ताके, राजत चण्डी-खेरा रे।
पूर्ण क्षेत्र शुभ रुचिर तपो-मय, जहँ मुनि करत बसेरा रे।
गङ्ग - धार जहँ विमल बहत, लखि मल न रहत तन केरा रे।।
जहँ नित नौबति झरत, द्वार पर बैठे गरजत शेरा रे।
चहुँ दिशि वेद पढ़ैं मुनि ज्ञानी, करत न जहँ जम फेरा रे।।
दरशन किहे लहै वाञ्छित फल, सुख भोगें बहुतेरा रे।
भणि 'शिवधार' अधार पूज्य कुल, इष्ट-देव सोइ मेरा रे।।

गङ्गा जी की धार जहँ अमल अपार बहै,
देखि अघ-ओघन के पुञ्जन हरा करैं।

घण्टा-घरियार-शङ्ख-भेरिन को शोर जहाँ,
नौबत दुवारे निशि-वासर झरा करैं ।।
वेदन को नाद औ विवाद उप-वेदन को,
सन्त-सम्वाद दीप-मालिक जला करैं ।
सुर सुर-पाल दिग-पाल द्वार-पालन के,
भाखै 'शिवाधार' नित्त पाँयन परा करैं ।।१।।
कहूँ वेद-नाद कहूँ ग्रन्थन को वाद कहूँ,
सन्त-सम्वाद बुध–वार्त्ता वितण्डिका ।
कहूँ जटा-धारी निराहारी हैं अचारी कहूँ,
बैठे ब्रह्मचारी कर सोहै ब्रह्म-दण्डिका ।।
कहूँ बलिदान कहूँ हवन-विधान कहूँ,
पूजन महान जगदम्ब की अखण्डिका ।
भाखै 'शिवाधार' किमि वदन हजार थाके,
जहाँ पै विराजमान है निदान चण्डिका ।।२।।

चहूँ ओर आला धर्म-शाला हैं शिवाला जहाँ,
देखत दिवाला हरैं कलि-मल-नाह की।
घण्टा घोर बाजै जात कोसन अवाजैं,
अरु गाजैं सिंह छाजैं छटा जाह्नवी-प्रवाह की।।
छहरैं पताका व्योम लहरैं सुदेत मानो,
अभै को इशारा भव-वारिध अथाह की।
भाखै 'शिवाधार' नेक व्यापै जग्त-माया नहीं,
छाया जहाँ रहै नित्य चण्डिका के बाँह की ।।३।।
चारि–मुख गावैं वेद शेष हूँ बतावै भेद,
नेक हूँ न पावैं जे जनैया वेद-बानी के।
सुर सुर-पाल दिग-पाल नग-पाल आय,
अरजी लगावैं नित्य द्वार महरानी के।।
बिनती सुनावैं जान अन्दर न पावैं,
द्वार-पाल धकियाय कै हटावैं जग-रानी के।

महिमा अपार कहि बदन हजार थाके,
बन्दै 'शिवाधार' पद चण्डिका भवानी के ।।४।।
तुही महा-माया तेज-रूप दरशाया तुही,
तुही उपजाया महा-भूत-मयी जक्त को ।
भेद नहीं पाया नेति-नेति कै बताया वेद,
अलख लखाया है अनादि शक्ति शक्त को ।।
आदि-ज्योति-काया तुही देवन बचाया,
तीन लोक यश छाया औ नशाया बीज रक्त को ।
कीजै बेगि दाया किमि सुरत भुलाया मातु,
शरणागतार्त राखु 'शिवाधार' भक्त को ।।५।।
तुही आदि-देवा वेद जानै नहीं भेवा,
करौं कौन विधि सेवा तव महिमा अपार पार ।
सिद्ध सनकादि नारदादि की चलावै कौन,
थाके कहि गुणन न पायो अन्त मुख चार ।।

शेष धर्‍यो सहस-बदन हू बखानिबे को,
सोऊ नहीं कह्यो नाय शीश गह्यो भूमि-भार ।
भाखै 'शिवाधार' मातु ! शरन सदा ही रहौं,
काहे न उबारत पुकारत हौं बार–बार ।।६।।
तेरी ही कृपा से महा-तत्त्व पञ्च-भूत भए,
तेरी ही कृपा से विधि भए विश्व-करतार ।
तेरी ही कृपा से लोक-पाल पालन के,
स्वामी गडुर-गामी विष्णु भए रमा-भरतार ।।
गिरिजा-रमन पञ्च-शर के दमन-हार,
तेरी ही कृपा से शम्भु भए विश्व-हरतार ।
भाखै 'शिवाधार' मातु ! तेरी ही कृपा से सदा,
चाहत उबार हौं पुकारत हौं बार-बार ।।७।।
तुही रूप-रूपा औ अनूपा औ विरूपा तुही,
तुही ज्ञान-जूपा औ तुही है एक निराकार ।

तुही विश्व जालै अरु पालै सदा घालै तुही,
तुही जग्त आलै करै ख्यालै तुही बार-बार ॥
तुही है अनन्ता वेद-वेदन भनन्ता तुही,
ध्यावत महन्ता तुही जानि ब्रह्म—तत्त्व सार ।
भाखै 'शिवाधार' नित्य तुही-तुही ध्यावत हौं,
लावत क्यों ब्यार मातु ! करत पुकार द्वार ॥८॥
तुही बेद-बानी तुही शारदा भवानी तुही,
विश्व की निशानी तुही सृष्टि की करन-हार ।
तुही जग्त-माता तुही मोक्ष की प्रदाता तुही,
जाता और अजाता तुही अखिल भुवन-सार ॥
तुही अशेष पालिका दनुज-कुल-घालिका,
तुही है महा-कालिका कहाँ लौं कहौं विचार ।
भाखै 'शिवाधार' अति आरत पुकारत हौं,
काहे न उबारत लगावत कहाँ धौं ब्यार ॥९॥

कहि मां समर्थ्य जौन महिमा तिहारी अम्ब,
भाखै निरशेष तौन ऐसो मोंहि ना लखात।
लेश हू न भाष्यो शेष विधि हू न पायो पेश,
नारद विशारद सों नेक हू न कहि जात ।।
बुद्धि सों अथाह गण-नाथ हू न पायो थाह,
वेद हू न जान्यो भेद नेति-नेति कै बतात।
भाखै 'शिवाधार' पारावार हूँ सो है अपार,
सुयश तिहारो लोक-लोकन में दरसात।।१०।।
तुही अष्ट-सिद्धि नवो-निद्धि रिद्धि-सिद्धि तुही,
विधि-रूप ह्वै कै सारी सृष्टि को करति है।
तुहीं विष्णु-रूप धरि पालना करत अम्ब,
विश्व के अशेष दुःख दारुण दरति है ।।
तुही है अनन्ता याते धरि कै अनन्त रूप,
धरा को असह-भार तृण सों धरति है।

भाखै 'शिवाधार' तेरो चरित न जानो जाय,
अखिल भुवन शिव-रूप ह्वै हरति है ॥११॥
तुही धरा - रूप धरि धरे है अशेष लोक,
तुही धराधर ह्वै कै धरे है वसुन्धरा।
तुही जल - राशि माँहि विमल विभासि रही,
विश्व में प्रकाशि रही तेज है विश्वम्भरा।
भाखै 'शिवाधार' अम्ब ! जित ही विलोकौं चितै,
नभ नाद पवन भुवन औ पुरन्दरा।
तितही तिहारी जग - जननि ! निहारी कीर्ति,
ऐसी रीति रावरी की सत्य है परम्परा ॥१२॥
तुही धराधर धराधर धराधर माँहि,
तुही धराधर माँहि वासित उदण्डिका।
तुही धरा धारा धर धारा धरेश धारा,
धर ध्वनि वादिन की ग्रासित अखण्डिका ॥

भाखैं 'शिवाधार' तुही आधर में पेखियत,
तुही सुधा-धर माँहि भासित है भण्डिका ।
तुही धराधर धर प्रजा-धर माँहि तुही,
तुही धरा-धर में प्रकाशित है चण्डिका ।।१३।।
तेरी अम्ब ! महिमा अपार पारावार हूँ सों,
किमि कहि पावों पार उतनी सक्ति ना ।
भाखौं तो न भाखो जाय राखौं तो न राखो जाय,
लाखौं विधि चाहौं तहूँ रसना बकति ना ।।
भाखैं 'शिवाधार' अब करत अबेर कहाँ,
एरी मेरी मातु ! काहे मों तन तकति ना ?
दीजै तजि बेरी कृपा कीजै यहि बेरी,
बिना भक्ति पाए तेरी मति कैसे हू छकति ना ।।१४।।
जहाँ पन्नागासन अनेक कमलासन जू,
और पाक-शासन सुखासन खड़े रहैं ।

जहाँ तुरगासन मृगासन की कौन कहै,
दासन के दासन के पासन अड़े रहैं ।।
भाखै 'शिवाधार' महिषासन न जान पावैं,
दूर-दूर शासन खवासन खड़े रहैं ।
बैठी सिंह - आसन पै कोटिन हुतासन - सो,
पायन के नीचे वृषभासन पड़े रहैं ।।१५।।
वेद-वेद गावैं नेति - नेति कै बतावैं लेश,
शेष हू न पावैं भेद हारे गुण गाय - गाय ।
सिद्ध सनकादि - नारदादि की चलावै कौन,
योगीश्वर ध्यावैं जाहि ध्यान हू में लाय-लाय ।।
पावैं नहीं पार थाके कहि मुख चार किमि,
भाखै 'शिवाधार' भक्ति अनुपम पाय - पाय ।
उदित उदण्ड तेज रवि सों प्रचण्ड जाको,
ताके पद - पङ्कज नवत शीश नाय - नाय ।।१६।।

कोटिन विश्व रचौ छिन में, पल ही में करौ सबको प्रतिपाला।
घालत हू में न बेर लगै, जब चाहत रूप सों होन निराला ।।
तेरी कथा अकथा जगदम्ब ! नहीं पर दूसरो आप-सों आला।
सो 'शिवधार' अधार धरे, धरणी-धर धरिणि-धारणि बाला ।।१७।।
तेरो परोस सनातन से है, निशा-दिन अम्ब ! भरोस तिहारो।
तेरहि नाम जपौं वसु-याम, न दूसरो काम को राख्यो लिहारो ।।
कौन सो चूक परी जन सों, 'शिवधार' करो सब काज सिहारो।
हे जगदम्ब ! विलम्ब भई, भरि कोर कृपा मम ओर निहारो ।।१८।।
मात कहाय बनात नहीं, बिन मात, कहाँ सुत आनँद पावत ?
भाँति अनेक करै नित पोषण, पूत - कपूत नहीं मन लावत ।।
सङ्कट कोटि हरै जन के, 'शिवधार' कहैं यह बेद बतावत।
मोंहि पुकारत देर भई जगदम्ब ! कहाँ धौं अबेर लगावत ? ।।१९।।
राम भजै घनश्याम कोई, शिव-शङ्कर को कोइ ध्यान चढ़ावै।
कोई दिनेश औ कोई गणेश को, कोई रमेश को दास कहावै ।।

कोई रटै हनुमान बली, 'शिवधार' कहाँ लगि भेद बतावै !
मोंहि भरोस तेरो जगदम्ब ! विलम्ब भई जन टेर लगावै ॥२०॥
जान को देत अजान को देत, जहान को देत न भूलत धोखे ।
पील-पिपीलन कौन गिनै, नित मुक्तन सों कल - हंसन पोखे ॥
जीव जहाँ जेहि लायक जौन तहाँ, तिनको तस राखत चोखे ।
सो 'शिवाधार' कहै अजहूँ जगदम्ब जी ! काहे न मोंहि को तोखे ? ॥२१॥
अब तौ जगदम्ब भरोस तिहार, विहाय कहूँ नहिं जावा चहौं ।
तजि कै जग-जाल पखण्डन को, गुण तेरे अनूपम गावा चहौं ॥
धरि ध्यान तुम्हार अराम करौं, घर बैठेहि मौज उड़ावा चहौं ।
'शिवधार' कहै तव रूप सुधा-निधि के, नित दर्शन पावा चहौं ॥२२॥
तेरो भरोस परोस सदा, अफसोस यही जो कि ख्याल करै ना ।
टेरत-टेरत बेर भई, अजहूँ लगि लौं कछु चित्त धरै ना ।
कौन सी चूक परी जन सों, 'शिवधार' को दारिद-दुःख हरै ना ।
तोहि बिहाय न जाउँ कहूँ, पर - देवन में बिसवास परै ना ॥२३॥

दीजै बताय कै अम्ब ! हमें जगदम्ब कहाय कै देर करी है।
तोसों कहाँ पुरुषोत्तम है, केहि लोक में कौन पुरी अगरी है ।।
जाउँ तहाँ बिनवों तेहि से, 'शिवधार' तो पूछत बात खरी है।
की विधि से तुम की तुमसे विधि की, हर से तुमने की हरी है ।।२४।।
सुठि चारु स्वरूप कहो नहिं जात रहो, नहिं जात जो मौन गहैं।
'शिवधार' भणै किमि शारद शेष न, नारद हू कछु भेद कहैं ।।
जिहि ध्यावत सन्त-महन्त सदा, सनकादि समाधि लगाय रहैं।
सोइ रूप मेरे हिय बास करै, जगदम्ब ! हमें वर देहु यहै ।।२५।।
करि दे परिपूरण आश शिवे ! निज दास विचारि यही वर दे।
वर दे पद-अम्बुज आपने में, मन मेरो मलिन्द तहाँ भर दे ।।
भर दे अभिलाष हिये 'शिवधार' के, पाणि सुपृष्ठ मेरे धर दे ।।
धर दे हे सुराम्ब ! विलम्ब भई, जगदं जगदम्ब ! कृपा कर दे ।।२६।।
सोचत हौं कर मींजि दोऊ, जल मोचत नैनन सों अकुलाय कै।
व्याकुल हाल-बेहाल महा दुख दारुण, देह फँस्यो मुरझाय कै ।।

हा 'शिवधार' जु छोड़े अचार, निहारि रहे तोंहि आस लगाय कै ।
आरत हो हौं पुकारत हौं जगदम्ब ! उबारत काहे न आय कै ॥२७॥
वासर बीति गये कितने अजहूँ लगिलों, कछु काज सरो ना ।
कौन सी चूक परी जन सों, जेहि कारण लेश कलेश हरो ना ॥
कीजै निहाल बिहाल निरेखि कै, देखि कै मोहित मौन धरो ना ।
हे जगदम्ब जी ! देर भई, 'शिवधार' की बेर अबेर करो ना ॥२८॥
तोंहि जपैं सनकादिक आदि, औ शिव-शम्भु समाधि में जागें ।
तोंहि से सृष्टि विरञ्चि रचैं, अरु तोंहि से विष्णु सुषुप्ति में लागें ॥
तोंहि से ब्रह्म खकार सकार, बिकार बिहाय अकार को त्यागें ।
तोंहि बिहाय कै जाँव कहाँ, 'शिवधार' कहै कहो कौन से माँगें ॥२९॥
हे जगदम्ब ! विलम्ब भई, मम ओर कृपा करि हेरि दे माता ।
देखत तेरे न मेरे रहै दुःख, दारिद दूरि करौ मम माता ॥
तूही अधार चराचर की, यह गावत शेष औ वेद बताता ।
सो 'शिवधार' करै बिनती अब की, जन जानि कै राखि ले बाता ॥३०॥

काह कहौं अरु जाँव कहाँ, केहि से कहिकै निज काज सँवारों ।
देखौ चितै जित तेरो तितै निरख्यो, नहिं दूसरे केर पवारों ।।
आरत द्वार पुकारत है 'शिवधार', कुदास कुपूत तिहारो ।
मेटिये खोरि कहौं कर जोरि, विलम्ब भई जगदम्ब ! निहारो ।।३१।।

बैसवार सुदेश खास, सुग्राम 'बकसर' नाम है ।
जहाँ बैस नरेश गद्दी, आदि सों सर - नाम है ।।
बसत द्विज-वर-मण्डली शुभ, कान्यकुब्जन की भली ।
हाट औ चौहाट बाटन सहित, राजत सब थली ।।
वहाँ से इक मील पश्चिम, धाम राजत चण्डिका ।
खलन केरी खण्डिका है, असुर-कुल की दण्डिका ।।
नमो ताके चरण-पङ्कज, विविध बिध सिर नाय कै ।
कर जोरि अम्बे ! करहुँ बिनती, बसहु मम हिय आय कै ।।



परिशिष्ट

श्री गणेश

सिद्धि के सदन गज-वदन रदन एक, मदन-कदन सुत आरत-हरन हैं।
सुन्दर विशाल तन शोभित सुभाल बाल इन्दु, लाल सेंदुर सुमङ्गल भरन हैं।।
भाखें 'शिवाधार' जाकी महिमा अपार पार, मूषक सवार दुःख दारुन-हरन हैं।
असरन-सरन करन हैं सुमतिवाले, सङ्कट-हरन श्रीगणेश के चरन हैं।।

श्री महादेव

ओढ़े मृग-छाल गले मुण्डन की माल सोहै, भाल में विशाल बाल शोभित छपेश हैं।
डमरू त्रिशूल कर कण्ठ काल हू को काल, भूषण कराल व्याल रहत हमेश हैं।।
भाखैं 'शिवाधार' करें जग्त प्रतिपाल, हरें दुःख विकराल नहिं राखत कलेश हैं।
दीन के दयाल करैं त्वरित निहाल हाल, आरत-हरन एक शङ्कर महेश हैं।।

श्रीकृष्ण

दीन-दयाल कहावत हौ, तब काहे न नाथ दया करि हेरो।
बूड़त मोह महा-नद के, शोक-समूह निशा-दिन घेरो।।
बारहिं बार पुकारत आरत ह्वै, 'शिवधार' कियो कहँ देरो।
बेगि सनाथ करौ जदु-नाथ! हरौ दुख दारुण दीरघ मेरो।।

श्री राम

शीश में मुकुट सोहै केशरि तिलक भाल, उर वन-माल पीत अंसुक नवीनो है।
चाप शर धारे येई ताड़का संघारे, नारि गौतम की तारे पुर पाँव नाय कीनो है।।
भाखैं 'शिवाधार' हैं अपार शोभा के अगार, जानकी अनुहार कर्तार करि दीनो है।
होवै नाहिं झूठी उपमान आन ऊठी सिया, सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीनो है।।
भले तौ विचारी ठीक मानौं मैं तिहारी नैन, इनको निहारी मैन कोटि छवि छीनो है।
पीत-पट आछे कटि काछनी को काछे पाछे, है निषंग आछे चाप शायक सो लीनो है।।
भाखैं 'शिवाधार' कोशलेश के कुमार दोऊ, परम उदार सुकुमार बै नवीनो है।
भाषी सो न झूठी यहै मेरो मन ऊठी, सिया सोने की अँगूठी राम साँवरो नगीनो है।।

श्री गंगाष्टक

भागीरथी तुम्हरी महिमा, किमि भाखि सकौं सहसानन हारे।
सारी पुनीत करी वसुधा, अघ-ओघ हरैं ते तरङ्ग निहारे ॥
तारे सुरापी और पापी महा, गुरु-शापी तेऊ वैकुण्ठ विहारे।
पै 'शिवधार' हैं दोष भरे, तौं भरोस यही जो परोस तिहारे ॥१॥

जन्म लियो जब से जग में, तब से धन पाय अनाप बटोरे।
भूलि रहेव भ्रमि भोग-विलासनि, हासनि में निज चित्तहि जोरे ॥
गङ्ग-तरङ्गन की महिमा लखि कै, कछु धीर भयो मन मोरे।
पै 'शिवधार' हैं दोष भरे, तौं भरोस यही जो परोस हैं तोरे ॥२॥

कायिक वाचिक मानस हूँ के हरैं, अघ-ओघ तरङ्ग निहारि।
भरेंगे 'शिवधार' अपार अपावन, भे सुठि पावन परसत वारि ॥
कहाँ लौं कहौं महिमा जल की, पल में त्रय ताप नसावत जारि।
परं पद को पथ मज्जन कीन्हें, ह्वै जात हैं पापी महा त्रिपुरारि ॥३॥

ना कछु धर्म कियों जग आय कै, ना सत-कर्म में चित्त लगायों।
ना सत-सङ्ग न तीर्थ-कथा, ना कबौं परमारथ में मन लायों।।
लीन रह्यों विषया-गन मैं, 'शिवधार' वृथा दिन-रैन गँवायों।
गङ्ग-तरङ्गन की महिमा लखि कै, मन में कछु धीरज पायों।।४।।
पापी अमान विमान चढ़े, सुर-दारा चहूँ दिशि चौर ढुरावत।
जात चले शिव-लोक कोई, विधि-लोक कोई हरि-लोक सिधावत।।
गङ्ग-तरङ्गन की महिमा, 'शिवधार' भणें विधि-अङ्क मिटावत।
यों जम सों जम-दूत कहैं, जम-लोक कोई नहिं आवन पावत।।५।।
गङ्गा-गङ्गा कहत न लेशहू कलेश रहैं,
पुञ्ज अघ-ओघन के देखत जही-जही।
तारे महा-पापी गुरु-शापी न विचार कीन्हें,
दीन्हें देव-लोक धोखे नाम हू कही-कही।।
भाखैं 'शिवाधार' जम-जातना की बात नहीं,
कहीं जन्हु-जाई आई जब से मही-मही।

रही नहीं सही गर्द-खाता रोजनामा भयो,
चित्र और गुप्त केरी फिरत बही बही ॥६॥

ओढ़े मृग-छाला गले मुण्डन की माला कण्ठे–
काल हू को काला पीवैं नित्त घोटि भङ्गा को ।
सोहै चन्द्र भाला लीन्हें डमरू विशाला शूल,
त्रिशिख कराला व्याल भूषण सु अङ्गा को ॥
नैन तीन आला रहै सदा मतवाला जन,
भाखैं 'शिवाधार' भेष कीन्हें है कुढङ्गा को ।
वाम वाम-अङ्गा रहै प्रेतन के सङ्गा ऐसे,
पूछतो को नङ्गा न धरतो शीश गङ्गा को ॥७॥

कुरु असनान गङ्गा-तोय को अमान फल,
सकै न बखान लेश शेष हू बनाय कै ।
नेति-नेति गावैं वेद भेदहू न पावैं कछु,
'शिवाधार' कहै किमि पामर कहाय कै ।

देह को डुबोय धोय पाप-ताप-तापन को,
पातकी पधारे स्वर्ग दुन्दुभी बजाय कै ।
द्वारे दिहे ताले प्रेत-नाथ सोये गारे माँहि,
धोयो चित्रगुप्त हाथ बही को बहाय कै ॥८॥

शीतला-स्तुति

खरारूढ़ आशाम्बरा मेघ-वरना। शीतला देवि के विमल पद्म-चरना ॥१॥
शालि हे मार्जनी पाणि में कलस सोहै । औ धरे मस्तके सूर्य को विश्व मोहै ॥२॥
परे रक्त कल्हार के कण्ठ माला । लसैं अङ्ग में चारु रक्ताङ्ग आला ॥३॥
कहाँ लौं कहैं सर्व-सिङ्गार साजे । अदा तुङ्ग वक्षोज की जौन राजै ॥४॥
नमो रासभस्थे नमो विष-हरायै । नमो शीतले ! देवि ! बिम्बाधरायै ॥५॥
सदा क्षेम-कर्त्री तुही जक्त-माता । तुही विश्व की पालिनी है विधाता ॥६॥
किहे ध्यान तेरे रहै कष्ट नाहीं । हरै आपदा कोटि लौं दण्ड माहीं ॥७॥
कहै 'शीतले-शीतले' जौन दाही । लहै मोद आनन्द को तौन ताही ॥८॥

भरे अम्बु-मध्ये करे जौन अर्चा। भजै नाम तेरो तजै अन्य चर्चा ।।९।।
नहीं रोग विस्फोट को धाम जाता। कभी कष्ट कैसो नहीं तौन पाता ।।१०।।
महा-कष्ट-कारी अहैं रोग जेते। हरैं आशु ही 'शीतले' के कहे ते ।।११।।
जदा पद्म की नाल के तन्तु ऐसो। धरै ध्यान हृन्नाभि के मध्य तैसो ।।१२।।
करै चिन्तना यों सदा द्योस-राती। तदा तासु के पास ना मृत्यु आती ।।१३।।
तुही विश्व-धात्री तुही विश्व-त्राता। तुही चक्षुषी नष्ट को अक्ष-दाता ।।१४।।
भजै सर्वदा जो तुम्हें सर्व-काला। होय सो सुखी आशु ही कष्टवाला ।।१५।।
नमो शीतलायै नमो शीतलायै। कहाँ लौं कहौं अम्ब ! तेरी कथायै ।।१६।।
सदा दास की आश को पूर्ण कीजै। सुधा वृष्टि कै रोग सों राखि लीजै ।।१७।।
कबौं रोग विस्फोट ना पास आवै। तुम्हैं अम्ब ! जो प्रेम सों नित्य ध्यावै ।।१८।।
गहै भक्ति-श्रद्धा पढ़ै जौन याको। हरै आशु विस्फोट को रोग ताको ।।१९।।
करौं वन्दना को कहौं हाथ जोरे। क्षमा मातु ! कीजै हरौ दुःख मोरे ।।२०।।
अहै दास तेरो 'शिवाधार' नामा। करै पाठ याको लहै पूर्ण कामा ।।२१।।
नहीं काव्य औ कोश को ज्ञान मोको। मेरी लाज मर्जाद को ख्याल तोको ।।२२।।

करहु दुख–भंगा

हे गिरि-पते ! गिरीश गौरीश गौरि अर्द्धङ्गा, शरणागतार्त हौं नाथ ! करहु दुख-भंगा ।
यह भव अथाह नहिं थाह वार न पारा, जहँ भौंर भरम की उठें देखि मन हारा ।।
अति चलत मनोरथ तुङ्ग तरङ्ग निहारा, परिपूर्ण अखण्डित लोभ जहाँ जल-धारा ।
तुम ही अनाथ के नाथ धरे शिर गङ्गा, शरणागतार्त हौं नाथ-करहु दुख-भङ्गा ।।
जहँ काम-रूप घरियार मगर 'मद' जानौ, अरु 'मोह' ग्राह को रूप समुझि चित आनौ ।
पुनि 'शोक' थोक हैं मीन पीन पहिचानौ, जहँ 'क्रोध' फणीन्द्र समान ग्रसत नित मानौं ।।
तेहि देखि डरत मुनि सन्त परत नहिं फङ्गा, शरणागतार्त हौं नाथ ! करहु दुख-भङ्गा ।
जहँ ज्ञान-मयी है नाव धर्म सों जोरी, अरु सत्य विवेक विचार दया की डोरी ।।
जहँ क्षमा दमा के डाँड़ वहाँ यक खोरी, मन चञ्चल करि या रूप बीच में बोरी ।
ना है मलाह किमि तरहुँ यहै अड़बङ्गा, शरणागतार्त हौं नाथ ! करहु दुख-भङ्गा ।।
अति दीन-हीन मति-छीन दशा तन घेरी, बहु करत न चलत उपाय हाय यहि बेरी ।
तुम आरत-हरण कृपाल अरज सुनो मोरी, अब कीजै वेगि सनाथ करत कहँ देरी ।।
भजु शिवा-शम्भु 'शिवाधार' छोड़ जग-सङ्गा, शरणागतार्त हौं नाथ करहु दुख-भङ्गा ।

श्री विश्वनाथ

[१]

भज विश्व-नाथ कैलाश-पती ।

शीश में गङ्ग भुजङ्ग अङ्ग में वाम भाग में पार्वती ।
मुण्ड-माल शशि बाल भाल में असित कण्ठ कर शूल यती ॥
नाम लेत सब हरत आपदा पाप रहत नहिं एक रती ।
'शिवाधार' के सब दुख हरिहैं शिव शङ्कर औ मात सती ॥

[२]

चलो करी काशी जी में वास ।

विश्वनाथ जी जहाँ विराजैं निसि-वासर रवि मास ।
अन्न-पूर्णा मात जहाँ पर सब विधि सकल सुपास ॥
भैरव जी की फिरै दुहाई, जहाँ न यम की त्रास ।
ढुण्ढिराज जी विघन विनासैं शुभ मति करैं प्रकास ॥
दरसन किहे लहै वाञ्छित फल विपद न आवै पास ।
बिना प्रयास मोक्ष-पद पावै बसै जाय कैलास ॥

गङ्गा जी के मज्जन कीन्हें पाप होत सब नास।
'शिवाधार' पर किरपा करिहैं समुझि आपनो दास ॥
भजि ले विश्व-नाथ पद-पङ्कज कष्ट कटें सब तेरे रे!
आनँद वन काशी के वासी वतन देवतन केरे रे!

[३]

भैरव जी कोतवाल जहाँ के यम आवत नहिं नेरे रे ॥ भजि ले०॥
'हर-हर' करत दारुण दुख पाप परत नहिं हेरे रे!
रहत कलेश लेश नहिं तन में आपद हरत घनेरे रे ॥ भजि ले०॥
शिव समान नहिं आन जगत में रिषि-मुनि जाके चेरे रे!
दरशन किहे लहै वाञ्छित फल परत न पुनि भव फेरे रे ॥ भजि ले०॥
याते ध्यान धरो निशि-वासर उठि नित साँझ-सबेरे रे!
'शिवाधार' को आनँद-कारी विश्वेश्वर प्रभु मेरे रे ॥ भजि ले०॥



'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल की एक रचना

—: बकसर की चण्डिका से :—

कसक उठा था मन चिन्तत बिशेष हो के,
व्याकुल विकल अति विषम विषाद से।
ध्यान किया युगल तुम्हारी भव्य मूर्तियों का,
शान्ति मिली भ्रान्ति मिटी 'मा भैः' के निनाद से ॥
आधि-व्याधि रोग-शोक सङ्कट विकट सब,
चण्डिके ! हैं जाते मिट एक तेरी याद से।
सुख और सम्पदा तथैव यश-मर्यादा,
भक्त-जन पाते तेरे विमल प्रसाद से ॥





श्री चण्डिका और श्री अम्बिका

'छोटी काशी' बकसर (उन्नाव)

सुरथ-समाधि मूर्ति दुइ थापी, अजहूँ तहाँ विराजैं ।
देव-अदेव आय नित पूजैं, अपने सुख के काजैं ।।

—'चण्डिका-माहात्म्य' (पृष्ठ ६)

